राष्ट्र की अस्मिता

● राम प्रकाश मिश्र

भारतीय कोयला खदान मजदूर संघ

५४२, डा. मुंजे मार्ग – कांग्रेस नगर,
नागपुर–४४००१२

राष्ट्र की अस्मिता

स्वदेशी

राम प्रकाश मिश्र

भारतीय कोयला खदान मजदूर संघ
५४२, डा. मुंजे मार्ग – कांग्रेस नगर,
नागपुर–४४००१२

लेखक – राम प्रकाश मिश्र

प्रकाशक – भारतीय कोयला खदान मजदूर संघ

प्राप्ति स्थान – भारतीय कोयला खदान मजदूर संघ
५४२, डा. मुंजे मार्ग, कांग्रेस नगर, नागपुर–४४००१२

मूल्य – ३ रुपया मात्र

मुद्रक :
'मातृभूमि' द्वारा नई दिल्ली में मुद्रित

भारत का अतीत वैभवशाली रहा है। पश्चिमी देशों के आर्थिक विकास से पूर्व हमारे देश में अर्थ के बारे में पूरा विचार हुआ है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र तो आज भी सब को प्रेरणा दे रहा है। जनसामान्य के आरोग्य रहने के लिए आयुर्वेद आज भी अत्यन्त उपयोगी एवं महत्वपूर्ण सिद्ध हो रहा है। भारतीय ज्योतिर्विदों ने बहुत पहले बता दिया था कि सूरज स्थिर है और पृथ्वी उसके चक्कर लगाती है। दशमान पद्धति का जनक हमारा गणित शास्त्र रहा है। न्यूटन से पहले ही शास्त्रों में गुरुत्वाकर्षण की बात हमारे पदार्थ विशेषज्ञों ने कही है। एलोरा, अजन्ता की गुफाओं की चित्रकारी हमारे रसायन शास्त्र की श्रेष्ठता के ज्वलन्त प्रमाण हैं। अनेक मन्दिर हमारी वास्तुकला की श्रेष्ठता सारी दुनियाँ को बता रहे हैं। दिल्ली में कुतुबमीनार के पास खड़ा लौह स्तम्भ अपने यहां के धातुशास्त्र की श्रेष्ठता शताब्दियों से खड़ा बता रहा है। समाजशास्त्र, योग शास्त्र तथा आध्यात्मिक शास्त्रों में हमारी विरासत अमूल्य थी।

वस्त्र उद्योग

भारत में वस्त्र उद्योग का इतिहास लगभग चार हजार वर्ष पुराना है। देश के कारीगरों ने महीनतम मलमल उत्पादित कर विश्व में भारत का नाम रोशन किया। एक पुरानी कहावत के अनुसार शहजादी जेबुन्निसा एक दिन सार्वजनिक कार्यक्रम में अल्पतम कपड़े पहनकर उपस्थित हुई, उसके पिता ने जब इसका कारण जानना चाहा तो शहजादी ने उत्तर दिया कि वे कम से कम मलमल की सात परतें पहने हुए हैं। यह कहावत मलमल की महीनता की द्योतक है। वर्ष १९४६ में एक विदेशी डाक्टर टेलर के अनुसार उसे सूत का एक पौण्ड का बण्डल प्राप्त हुआ, जिसमें निहित सूत की लम्बाई लगभग २५० मील थी। ढाका के मलमल की महीनता के बारे में कहा जाता है कि १८ गज मलमल माचिस की डिबिया में रखा जा सकता था। जब भारत के कारीगर गुणवत्ता को अपना कर वस्त्र उत्पादित करते थे तब अन्य देशों में मानव चमड़ा तथा पेड़ों की छाल से अपना तन ढकते थे। इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि भारत अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, योगशास्त्र, आयुर्वेदशास्त्र, गणितशास्त्र, पदार्थशास्त्र, रसायन शास्त्र, वास्तुकला शास्त्र एवं धातुशास्त्र तथा वस्त्रोत्पादन कला में सबसे आगे था। आज अपने को विकसित कहलाने वाले देश भारत की तुलना में बहुत पीछे थे।

भारत का उत्थान और पतन

जहां भारत का स्थान विश्व में सबसे ऊंचा था। वहीं आज विश्व के भिखारी देशों में इसका तीसरा स्थान है, जो एक चिन्ता का विषय है। ईसा पूर्व ३२७ वर्ष पहले भारत पर सिकन्दर का आक्रमण हुआ। आचार्य चाणक्य ने अपने शिष्य चन्द्रगुप्त के साथ देश में एकता का सूत्रपात किया और बलशाली राष्ट्र स्थापित किया, जो सन् ६३७ तक चला। ६३७ में फारस सम्राट की कुदसिया युद्ध में पराजय हुई। अरब सेनायें काबुल तक पहुँची। काबुल से ७१२ में मोहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध पर कब्जा कर लिया। १०१८ में लाहौर भी अरबों के हाथों में चला गया। महमूद गजनवी और मुहम्मद गौरी आये, काफी लूटपाट की। ११९२ में तराई के युद्ध में पृथ्वीराज चौहान मुहम्मद गौरी से पराजित हुए। पूरा दोआब क्षेत्र गौरी के कब्जे में आ गया। १५२६ में बाबर का आक्रमण हुआ। मुगल शासन प्रारंभ हुआ। भारत के भाग्य ने पुनः करवट ली। १५७४ में क्षत्रपति शिवाजी ने औरंगजेब के साथ युद्ध में उसके दांत खट्टे कर दिए और अपना साम्राज्य स्थापित किया। बाजीराव प्रथम ने भी अपना राज्य अटक से कटक कर स्थापित किया। उन्होंने धीरे-धीरे देश पर अपना अधिकार क्षेत्र बढ़ाया।

उसी समय पुर्तगालियों का प्रवेश गोवा में हुआ। १६२२ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपना प्रभाव व अधिकार बढ़ाने के लिए डच लोगों से युद्ध किया। धीरे-धीरे पूरे देश पर अपना व्यापारिक प्रभाव एवं अधिकार बढ़ाया। १७५७ पलासी के युद्ध तक ब्रिटेन बहुत गरीब था वस्त्र के मामले में बहुत पिछड़ा था। यही कारण था कि भारत के वस्त्र ब्रिटेन में बहुत लोकप्रिय थे। द्वेषवश १८०० में ब्रिटेन की सरकार ने अपने यहां भारत के बने कपड़ों को पहनने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। १८७५ में ब्रिटेन में देशभक्त संघ बना। भारत के बने कपड़े पहनने वाली महिलाओं का सामाजिक बहिष्कार किया गया। भारत के कारीगर अपने अगूँठे के नाखून में छेदकर उसकी सहायता से बारीक सूत तैयार करते थे। अंग्रेजों ने भारत के वस्त्रकला को नष्ट करने का सोचा। उन्होंने कारीगरों को परेशान करना शुरू किया। यहां तक कि उन्होंने कारीगरों के अगूँठे तक कटवा दिए, उनके घर ढहा दिये। वे मजबूर होकर इधर-उधर भागने लगे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के इस घृणित कार्य को अंग्रेज पत्रकार हिक्की ने समाचार-पत्रों में प्रकाशित कराया। उसे पकड़कर जेल में डाल दिया गया। व्यापार करने के लिए आई ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत पर धीरे-

धीरे शासन करना प्रारंभ किया। कुछ वर्षों तक भारत में कम्पनी का शासन रहा। बाद में ब्रिटेन की सरकार का शासन अपने देश पर रहा, जो १५ अगस्त १९४७ को भारत के विभाजन के साथ समाप्त हुआ।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ

भारत जब स्वतंत्र हुआ उस समय अपने देश में ८ बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ थीं और आज बढ़कर १५०० हो गई हैं। आगे ३०० बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को अपने देश में पूंजी निवेश करने को आमंत्रित किया गया है। आगे चलकर अपने देश में कितनी बहुराष्ट्रीय कम्पनियां और हो जायेंगी यह तो भविष्य ही बताएगा। पहले जो बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ यहां आई थीं, उनकी मंशा यहां पर राज करने की थी, किन्तु अब जो विदेशी कम्पनियाँ भारत में आ रही हैं उनकी मंशा यहां आर्थिक साम्राज्य स्थापित करने की है। कारण कि यहां की आबादी (जनसंख्या) से उनको अच्छा बाजार उपलब्ध हुआ है। दूसरे यहां की बेरोजगारी के कारण उन्हें सस्ता श्रम (लेबर) प्राप्त हो जाता है। तीसरे यहां कृषि से कच्चा माल तथा रत्न गर्भा वसुंधरा से पर्याप्त मात्रा में खनिज पदार्थ मिल जाता है। चौथे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को यह पता है कि भारत की जनता में स्वदेशी की अपेक्षा विदेशी के प्रति आकर्षण है। वर्षों तक गुलाम रहने के कारण अपने देश, और संस्कृति के प्रति जो श्रेष्ट भाव हमारे मन में रहना चाहिए उसका भी काफी ह्रास हुआ है। वर्ष १९३८ में पण्डित नेहरू की अध्यक्षता में गठित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की उपसमिति ने भारतीय अर्थ व्यवस्था में विदेशी निवेश तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हस्तक्षेप का विरोध किया था। आश्चर्य इस बात का है कि स्वतंत्र भारत की नेहरू सरकार ने विदेशी पूंजी-निवेश की तरफ जोरदार झुकाव दिखाया। नेहरू और उनके सहयोगियों ने विदेशी कम्पनियों को खुश करने के लिए धीरे-धीरे पुनः देश को दासता की ओर खिसकाया। नेहरू कहने लगे कि भारत में विदेशी पूँजी निवेश का प्रवेश आर्थिक विकास में योगदान, रोजगार के अवसरों को बढ़ावा देना, जीवन रक्षक दवाओं के निर्माण एवं प्रसार में सहयोग करना, गुणवत्ता उत्पादों का निर्माण करना, देश के अनुसंधान एवं विकास में रचनात्मक सहयोग करना आदि काम करेगा। परन्तु गहन अध्ययन करने से पता चला कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की गतिविधियाँ घातक हैं।

भारत जब स्वतंत्र हुआ तो अपने पास अंग्रेजों द्वारा दिया गया ३४५२ करोड़ रुपया था, किन्तु १९५१ में हमारे ऊपर ३२ करोड़ का विदेशी कर्ज हो गया। भारत जैसे कृषि प्रधान देश की योजनाएँ कृषि पर आधारित होनी चाहिए थीं। इसीलिये नेहरू ने प्रथम पंचवर्षीय योजना कृषि केन्द्रित बनाई। चूंकि नेहरू पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में थे इसलिये उन्होंने अवास्तविक सपनों के घेरे में आकर विकास की योजनायें पश्चिम कल्पनाओं के आधार पर बनाना शुरू किया। बिना सोचे समझे उनके इस कार्य से अपना देश पुनः आर्थिक गुलामी की ओर बढ़ने लगा।

समाजवादी ढांचे में पूंजीवादी तंत्रज्ञान

वर्ष १९५६ के बनाए गये विकास के ढांचे से इस नये अध्याय की शुरूआत हुई। पं. नेहरू ने विकास के लिए जो ढांचा अपनाया। उसका नाम 'महालनोविस' ढाँचा था। पं. नेहरू का विश्वास था कि देश के विकास के लिए रोजगार परक योजना नहीं अपितु उत्पादन बढ़ाने वाली योजना चाहिए। उनका यह भी विश्वास था कि अधिक उत्पादन देने वाला तंत्रज्ञान यदि हमारे देश में आता है तो उत्पादन तो बढ़ेगा ही साथ ही उसकी गुणवत्ता भी बढ़ेगी। इसलिए 'महालनोविस' के बनाए गये ढाँचे के अनुसार आधुनिक तंत्रज्ञान पर आधारित भारी उद्योगों को प्राथमिकता दी गई। समाजवादी अर्थ रचना के अनुसार इन उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्रों को सौंप दिया गया। चूंकि 'महालनोविस' का ढांचा समाजवादी था। उसमें पूंजीवादी तंत्रज्ञान अपनाने के कारण दोनों की अच्छी बातों के बजाय खराब बातें हमारे पास आ गईं। इस योजना में ४८०० करोड़ रुपये व्यय का लक्ष्य था, किन्तु योजना ऐसी थी कि उसका ५ वर्ष में पूरा होना अशक्य था। दूसरी बात कृषि के स्थान पर पूंजी प्रधान औद्योगिकरण को प्राथमिकता दी गई। इसलिए विदेशी तंत्रज्ञान और विदेशी ऋण लिया गया। परिणाम यह हुआ कि जहां पहली योजना के अन्त तक भारत पर ३१७ करोड़ रुपये का विदेशी कर्ज था। दूसरी योजना के अन्त तक यह कर्ज बढ़कर २२५२ करोड़ हो गया। १९८५ में विदेशी ऋण ३५७२५ करोड़, १९८९ में ६२३०० करोड़ और १९९१ में १६२००० करोड़ तक पहुँच गया।

विदेशी पूंजी (ऋण) और विदेशी तंत्रज्ञान सार्वजनिक क्षेत्र में लगाए गये, किन्तु उत्पादन बढ़ाकर निर्यात के द्वारा विदेशी मुद्रा प्राप्त करने में हम पूर्णतया असफल रहे। भारत में संसाधन तथा पूंजी कम है, जब कि पाश्चात्य देशों में मानव शक्ति

कम है और संसाधन तथा पूंजी ज्यादा है। पण्डित नेहरू को अपने विफलता का पता १९६३ में हुआ और उन्होंने महात्मा गांधी द्वारा सुझाई गई योजना पर सोचना शुरू किया था, किन्तु उन्होंने जो सोचा वह पूरा नहीं हुआ और उनकी मृत्यु के बाद पूरा होना और कठिन हो गया।

विदेशी ऋण

आज देश पर जो १६२००० करोड़ विदेशी ऋण है, उसके साथ ही २२५००० करोड़ स्वदेशी ऋण भी है। प्रति वर्ष ३६००० करोड़ रुपया कर्ज पर ब्याज देना पड़ता है। भारत सरकार कर्ज का ब्याज चुकाने में भी जब विफल रही तो १४००० से १७००० करोड़ विदेशी कर्जा इसलिए लिया कि वह कर्ज के ब्याज को चुका सके।

निर्यात से होने वाली आय का २६ से २७% ब्याज में चला जाता है साथ ही ३६% ऋण के मूल की अदायगी करनी होती है। इस प्रकार निर्यात का ६३% विदेशी ऋण और उसके ब्याज में देना पड़ता है। सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में १ लाख करोड़ पूंजी लगी है और वे निरन्तर घाटे में चल रहे हैं। भारत की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गई हैं। ऋण जाल से बाहर आने का एक ही उपाय है कि आयात कम हो और निर्यात बढ़े। इससे हमारे पास विदेशी मुद्रा बढ़ेगी। तभी हम विदेशी मुद्रा में विदेशी ऋण चुका पायेंगे।

अवमूल्यन

ऐसे देश जिनका हमारे देश पर कर्ज है वे बराबर इस बात का दबाव डालते हैं कि भारत अपने रुपये का उनके डालर और पौण्ड आदि की तुलना में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अवमूल्यन करे, जिससे हमें निर्यात और आयात दोनों में घाटा होता है। निर्यात की गई वस्तु पर अवमूल्यन के कारण हमें विदेशी मुद्रा कम प्राप्त होती है। आयात की गई वस्तु पर हमें अधिक पैसा देना पड़ता है। रुपये के अवमूल्यन के कारण हमारा विदेशी कर्जा १३०,००० करोड़ से बढ़कर १६२,००० करोड़ हो गया।

मुद्रा स्फीति

मुद्रा स्फीति के मुख्य तीन कारण होते हैं पहला घाटे का बजट, दूसरा काला धन, तीसरा कम उत्पादन। दुर्भाग्य से हमारे देश का बजट प्रतिवर्ष घाटे का ही

प्रस्तुत किया जाता है। आय कम होने के कारण घाटे को पूरा करने के लिये नोट अधिक छापना पड़ता है। अर्थात् बाजार में नोट का प्रचलन ज्यादा हो जाता है। उत्पादन कम हो जाता है। जो चीज बाजार में अधिक होगी वह सस्ती होगी। अर्थात नोट सस्ती हो जाती है, जिसके कारण रुपये की क्रय शक्ति गिर जाती है। इसी को मुद्रा स्फीति कहते हैं। काला धन ८०,००० करोड़ पहले से प्रचलन में है। वह रुपये की क्रय शक्ति गिराने में सहायक होता है। काला धन पर नियंत्रण नहीं हो पा रहा है। जो चीज बाजार में अधिक होगी वह सस्ती होगी अर्थात् रुपया सस्ता और चीज महंगी होगी। वर्तमान समय मुद्रा स्फीति भारत में ८% है, जिससे वित्त मंत्री बहुत खुश हैं। मुद्रा स्फीति की गिरावट को अपनी सबसे बड़ी उपलब्धि मान रहे हैं। विदेशों से यदि अपने देश की तुलना की जाये तो ब्रिटेन में यह दर ३.४, इटली में २.३, हालैण्ड में २.१, अमरीका में १.८, स्पेन में १.७, स्वीडन में, ०.५, जापान में १.२ तथा फ्रांस में ३.१ प्रतिशत है। ऐसे में यदि वित्त मंत्री से पूछा जाए कि क्या भारत में वाकई मुद्रा स्फीति की दर कम है ? शायद वे कुछ बोलने के स्थान पर मौन रहना ज्यादा पसन्द करेंगे।

(माया पत्रिका से साभार १५ अक्टूबर, १९९२)

रोजगार निर्माण

सरकार की गलत आर्थिक और औद्योगिक नीतियों के कारण गरीबी, बेरोजगारी एवं विषमताओं ने देश को घेर लिया है। बेरोजगारी के सरकारी दावे भी झूठे साबित हुए हैं। १९७३-७८ में रोजगार निर्माण की दर २.८% थी, जो अब घट कर १.५५% हो गई है। सरकार की नीतियाँ भी रोजगार प्रधान न होकर उत्पादन प्रधान हैं। उत्पादन बढ़ना दूर रहा लोगों को रोजगार भी नहीं मिल रहा है।

आर्थिक साम्राज्य की पुनर्स्थापना

विश्व के विकसित देश इकट्ठे होकर अपने अर्थबल के आधार पर विश्व के गरीब देशों को अपने ऋण जाल में फँसाकर उनके आर्थिक व्यवहार को अपने हाथों में लेने का प्रयास कर रहे हैं। विदेशी ऋण जाल में फँसे चिली, मैक्सिको, ब्राजील, फिलीपाइन्स और अर्जनटाइना अपने ट्रांसपोर्ट, रेलवे, टेलीफोन सेवाएँ, सार्वजनिक क्षेत्र के कारखाने, पावर हाउस आदि उन देशों के आधीन कर चुके हैं, जिनका कर्जा

ऊपर कर्ज है। उदाहरण के लिए फिलीपाइन्स अपना सब कुछ गँवा चुका है। वहाँ के बेरोजगार नवयुवक रोजी-रोटी की तलाश में इधर-उधर भटक रहे हैं। इस देश की नवयुवतियाँ बेरोजगारी से तंग आकर हांगकांग में देह व्यापार करने को विवश हुई हैं। देखने में पूर्ण रूप से स्वतंत्र किन्तु वे परतंत्रता का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ब्राजील दिवालिया तो है ही किन्तु विकसित देश वहां पर अराजकता फैला रहे हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई.एम.एफ.) इसकी स्थापना १९४४ में हुई, यह किसी देश को उनके आन्तरिक खर्चे के लिए ऋण देता है।

विश्व बैंक (वर्ल्ड बैंक) इसकी स्थापना १९४८ में हुई है। यह किसी भी देश को विकास कार्य के लिए ऋण देता है। जैसे ग्रामीण विद्युत योजना के लिए, नहरों की खुदाई के लिए आदि। हमारे देश में विकास कार्य के लिए विश्व बैंक से जो भी पैसा स्वीकृत होता है, उसका मुश्किल से ६०% उपयोग हो पाता है। शेष पैसा टाइम अप हो जाने के कारण पड़ा रहता है, जिस पर हमारी सरकार विश्व बैंक को १.५% से २% तक जुर्माना (ब्याज) देती है। यह हमारी ढिलाई का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक जिस देश को ऋण देते हैं वे अपनी कुछ शर्तें उस देश पर थोपते हैं। जैसे –

(अ) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर रुपये का अवमूल्यन।

(ब) यह दोनों लाइसेन्स पद्धति को उदार बनाने पर दबाव डालते हैं। कौन से क्षेत्र में, कौन सा उद्योग, कितनी संख्या में कौन उद्योग लगाए इस पद्धति के निर्धारण को लाइसेन्स पद्धति कहते हैं।

(स) सार्वजनिक प्रतिष्ठान का निजीकरण करने पर जोर दबाव इसलिए डालते हैं कि विदेशी कम्पनियाँ इस उद्योग को ले सकें। उद्योगों के निजीकरण में खतरा है। कुछ ऐसे उद्योग हैं जिसे विदेशी कम्पनियाँ ही ले सकती हैं। उदाहरण के लिए रेलवे विदेशियों के हाथ में होगी तो उस समय क्या होगा जब हमें संकट काल में अपनी सेना देश के एक कोने से दूसरे कोने भेजना होगा। उस समय यदि सेना समय से मोर्चे पर न पहुँची तो हम बिना लड़े ही शत्रु से हार जायेंगे।

(द) विदेशी पूँजी का निवेश

विदेशी पूँजी का निवेश बढ़े इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक कर्ज लेने वाले देश पर दबाव डाल कर अधिक सुविधा प्राप्त करते हैं। जैसे भारत में पहले बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का शेयर सीमा ४०% थी अब वह बढ़कर ५१% हो गई है। आगे भी इस बात का बराबर दबाव है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का शेयर ५१% से बढ़ाकर १००% कर दिया जाये।

यह दुर्भाग्य ही है कि भारत सरकार ने अपने १९९१ के बजट में ये चारों शर्तें स्वीकार कर ली हैं। ऐसा लगता है कि जैसे भारत का बजट ही विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अधिकारियों ने बनाया है।

(र) खाद पर सब्सीडी (छूट) देने पर रोक

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक खाद पर सब्सीडी देने को भी मना करते हैं। इस कार्य में भी उनका स्वार्थ है। यदि खाद पर छूट देना बन्द हो जायेगा तो खाद महंगी होगी, किसान खाद कम खरीदेगा। खेतों में यदि खाद नहीं पड़ेगी तो उत्पादन कम होगा। उत्पादन कम होने पर भारत जैसा देश विदेशों से अनाज का आयात करने को बाध्य होगा। हमारी अनाज के मामले में जो आत्मनिर्भरता है वह समाप्त होगी।

(ल) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक किसी देश के औद्योगिक सम्बन्ध कानून में भी अपने अनुसार बदल करने को बाध्य करते हैं। एक बार तो इन दोनों ने भारत सरकार पर दबाव डाला कि वह कर्मचारियों के हड़ताल ऐसे मौलिक अधिकार पर प्रतिबन्ध लगाए, किन्तु श्रमसंघों के कड़ा विरोध के कारण ऐसा नहीं हो सका।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक जिस पर आजकल अमरीका का वर्चस्व है, उसने भारत सरकार पर दबाव डाला कि वह "अग्नि" का परीक्षण न करे। रूस से लड़ाकू विमान खरीदने को रोका। क्यूबा को चावल बेचने पर नाराजगी प्रकट की है। अब तो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक का दबाव है कि हम अपनी बीमार मिलों को बन्द कर दें। कर्मचारियों की छटनी करें तथा गोल्डेन शेक हैण्ड की शर्त पर उनको घर जाने पर बाध्य करें। ऐसी अनेक बाते हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि इन दोनों का भारत पर अनेक प्रकार से दबाव है। जो एक प्रकार से हमारे आन्तरिक मामले में सीधा हस्तक्षेप है। किसी भी स्वतंत्र देश के लिए इस प्रकार का हस्तक्षेप ठीक नहीं है।

उत्पादन पद्धति में बदल

हमें अपने उत्पादन पद्धति में बदल करनी होगी। जब तक इसमें बदल नहीं आएगा तब तक भारत का आयात घटेगा नहीं। हमारे आयात का २०% भाग पैट्रोल और ३३% भाग तकनीकी संसाधन और यंत्र हैं। इसमें कटौती तब तक नहीं हो सकती है जब तक हम अपने उत्पादन पद्धति को नहीं बदलते। उदाहरण के लिए हमारे फर्टीलाइजर कारखाने पैट्रोल पर आधारित हैं। जब तक फर्टीलाइजर के उत्पादन पद्धति में बदल नहीं होता है तब तक हमें इसके लिए पैट्रोल आयात करना ही पड़ेगा।

लाइसेन्स पद्धति

लाइसेन्स पद्धति समाप्ति का अर्थ है बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का सभी क्षेत्रों में फैलाव तथा देश की समस्त आन्तरिक व्यवस्था पर उनका प्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित होना। जब सार्वजनिक क्षेत्र का निजीकरण होगा तो रेल जैसे बड़े उद्योग को बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ ही खरीद सकेंगी। भारत सरकार ने दबाव में आकर लाइसेन्स पद्धति को काफी उदार बनाया है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की वास्तविकता

ऐसा कहा जाता है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ विदेशी पूँजी अपने देश में लाती हैं, किन्तु यह बात सही नहीं है। वर्ष १९५६ से ७५ तक का सर्वेक्षण बताता है कि उस समय की ५० सबसे बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों सिर्फ ५.३% पूँजी बाहर से अपने साथ लाईं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने अधिकांश पूँजी यहां के बैंकों और अर्थ संस्थाओं (फाइनेन्सियल इन्स्टीच्यूशन) से ऋण लेकर तथा जनता को शेयर्स बेचकर इकट्ठा की और पूँजी से अपने उद्योग को चलाया तथा भारी मुनाफा कमाया।

आधुनिक तंत्र ज्ञान

जो विदेशी कम्पनियाँ यहां अत्याधुनिक तंत्र ज्ञान लाती हैं उसे आत्मसात करने का अधिकार हमें नहीं रहता है। इसके बदले भारी कीमत देकर हम कल पुर्जे आयात करते हैं और सस्ता मजदूर लेकर वह पुर्जे केवल जोड़े जाते हैं। विशेषकर वह अपने यहां से वह तकनीक लाते हैं, जो उनके यहां पुरानी हो जाती हैं और उसको कोई खरीदने को तैयार नहीं होता है। जिसकी कीमत विदेशों में शून्य हो जाती है, वह

भारत भारी कीमत देकर नयी तकनीक के नाम पर विदेशों से खरीदता है। लोगों में यह भी चर्चा है कि विदेशी कम्पनियों के आने से हमारे यहां रोजगार की वृद्धि होगी। इसके लिए एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। पेप्सी कम्पनी भारत सरकार से अनुमति लेकर पंजाब प्रदेश सरकार से समझौता करके यहां आई और वादा किया कि ५० हजार लोगों को रोजगार मिलेगा, किन्तु रोजगार मिला केवल ४८० लोगों को। १९८८ में आई.एल.ओ. ने एक सर्वेक्षण किया और पता चला कि विदेशी कम्पनियों द्वारा निर्मित रोजगार में कमी आई है। कुछ तंत्रज्ञ, व्यवस्थापक तथा कुशल कारीगरों तक ही रोजगार उपलब्ध होता है।

उत्पादनों की गुणवत्ता

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आने के कारण अपने यहां के उत्पादन की गुणवत्ता बढ़ेगी यह धारणा गलत है। इन्होंने प्रमाणिक स्पर्धा के बजाय अपने सामने वाले उत्पादकों को तबाह किया। नागपुर में पेप्सी की मार्केट बढ़े इसलिए उसने पार्ले बाटलिंग केन्द्र को अधिक पैसा देकर खरीद लिया। इसके बावजूद भारतीय उत्पादन बहुराष्ट्रीय उत्पादनों से अच्छे सिद्ध हुए हैं। जैसे थम्स अप, एशियन पेण्टस, रसना व मोदी टायर आदि।

भारतीय नियमों का उल्लंघन

व्यापार से सम्बन्धित कर न देना, आयात निर्यात् कानून का उल्लंघन करना, विदेशी कम्पनियों की यह आदत बन गई है। सरकार ने दवाइयों के बारे में कुछ नियम बनाए हैं। जैसे टानिक दवाइयों की उत्पादन क्षमता का अनुपात सरकार द्वारा तय किया गया है, किन्तु विदेशी कम्पनियाँ अत्यावश्यक दवाइयों का उत्पादन ५ से ४०% करती हैं और अनावश्यक टानिक दवा का उत्पादन ३००% तक करती हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने मनुष्य की सभी बीमारियों के लिए १८० दवाइयों की सूची बनाई है। अपने देश में ऐसी सूची २०० की है, किन्तु हमारे देश में ५१५ दवाईयाँ ३००० विभिन्न नामों से बेची जा रही हैं। रोश नाम की कम्पनी ने लिब्रियम और व्हलियम नामक द्रव्यों की कीमत क्रमशः १३२४६ और २७८४० रुपया प्रति किलो लगाया है जबकि इनकी वास्तविक कीमत ३८० और ४६२ रुपये प्रति किलो है। अनाल्जीन्स की टिकिया २ पैसे में १० टिकिया के भाव से रूस से भारत सरकार मंगाती है, जिसे विदेशी कम्पनियाँ खरीद कर आकर्षक पैकिंग करके ५ रु. १० पैसे में १० टिकिया अनाल्जीन्स बेच रही हैं।

विलासिता

बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ हमारे देश में विलासिता सम्बन्धी अनेक चीजें बना रही हैं। बेवी फूड्स, लिपिस्टिक, टूथपेस्ट, साबुन, अनावश्यक टानिक, रंगीन टी.वी., वाशिंग मशीन आदि, जिनसे बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भारी मुनाफा कमा रही हैं। विज्ञापन के माध्यम से वे प्रचार भी करती हैं। न मिटने वाली भोगवादी तृष्णा वे जनमानस में उत्पन्न कर रही हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बारे में विशेष जानकारी के लिए कहा जा सकता है कि – देश में आजकल वे कुल १५०० की संख्या में हैं। आगे बढ़ने की सम्भावना है। ७६ प्रतिशत बाजार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथ में हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ दवा के क्षेत्र में ७५% हैं। ६% सहकारी संस्थाओं तथा १९% निजी कम्पनियों के क्षेत्र में दवायें बनती हैं। विदेशी कम्पनियों की प्रतिस्पर्धा के कारण लाखों की संख्या में लघु उद्योग इकाइयाँ बीमार पड़ी हैं। रिजर्व बैंक ने सितम्बर १९९० तक के बीमार लघु उद्योग की सूची प्रकाशित की हैं जो इस प्रकार है :–

प्रदेश	बीमार लघु उद्योगों की संख्या
महाराष्ट्र	१९८७३
पश्चिम बंगाल	३५८७०
तमिलनाडू	१०४८७
उत्तर प्रदेश	३०६५४
गुजरात	६४१३
आन्ध्र प्रदेश	२९९७७
दिल्ली	०४४७९
केरल	१६११५
कर्नाटक	१०९८२
मध्य प्रदेश	१६९९०

पंजाब	०५०८४
हरियाणा	०३५१९
बिहार	०३३४६
राजस्थान	११५१९
उड़ीसा	०६५०५
असम	०४४४८
गोवा	०१२४४
हिमाचल	०११९२
चण्डीगढ़	००२७२
कश्मीर	०१८०६
पाण्डेचेरी	००२०६
अन्य	०२३१६

इस प्रकार सितम्बर १९९० तक कुल २१९२०७ लघु उद्योग बीमार थे। आगे और कितने बीमार हुए हैं उसकी अधिकृत आँकड़े प्राप्त नहीं हैं किन्तु लघु उद्योग निरन्तर बीमार हो रहे हैं, जिसमें अनुमानतः अब बीमार लघु उद्योगों की संख्या – २५०००० हो गई होगी। साबुन बनाकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ प्रतिवर्ष १२०० करोड़ का मुनाफा कमा रही हैं। विदेशी कम्पनयिाँ अपने देश में प्रतिवर्ष केवल ९०० करोड़ का पेय पदार्थ बेच रही हैं। अन्य देशों में प्रतिबंधित दवाइयाँ बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ हमारे देश में १८०० करोड़ रुपये की बेच रही हैं। २ हजार ५० करोड़ का फूड विदेशी कम्पनियाँ अपने देश में बेचती हैं। १९६७ में टूथ पेस्ट में क्लोराइड्स इस्तेमाल न करने के बारे में आदेश निकाला गया था। कारण कि क्लोराइड्स से बच्चों के दाँत और मसूड़ों में कमजोरी आती है, किन्तु आदेश के बावजूद विदेशी कम्पनियाँ क्लोराइड्स मिला टूथ पेस्ट आज भी धड़ल्ले से बेच रही हैं। हमारे देश में ८ करोड़ रुपये का दातौन प्रतिवर्ष विदेश भेजा जाता है, जिसे छोड़कर हम विदेशी टूथ पेस्ट अपना रहे हैं। सौंदर्य प्रसाधन बनाने वाली टिप्स एण्डटोज का मुनाफा १९९१-९२ में ३०.५९ लाख रुपये शुद्ध लाभ के रुप में था।

आयातित तकनीक

विश्व के कई देशों की सरकारें विदेशी कम्पनियों को इसलिए आमंत्रित करती हैं कि वे विकास के लिए आवश्यक नई तकनीक और पूँजी देश को देंगी। यह सत्य है कि अधिकतर तकनीक जो पालक देशों से भारत में आती हैं वह १०-१२ वर्ष पुरानी होती हैं, जिसके आयात में शायद ही कुछ व्यय करने की आवश्यकता हो। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ तृतीय देशों को अपनी अनुपयोगी एवं पुरानी तकनीक थोपती हैं। विकसित देशों की जो तकनीक वर्षों पहले अप्रचलित हो जाती हैं वे वस्तुएँ थोड़े बहुत संशोधन के बाद आधुनिक उत्पाद के रूप में तृतीय विश्व के देशों में बेची जाती हैं। वर्ष १९६१-७१ के मध्य अमरीकी कम्पनी 'इण्टरनेशनल बिजनेस मशीन' ने पुरानी मशीनें निर्यात करके अपने देश को ४ करोड़ का व्यवसाय दिया। उन मशीनों का विश्व के किसी भी भाग में कोई व्यापारिक मूल्य नहीं था। यदि विकसित देशों के पास कोई नई तकनीक है तो वे तृतीय विश्व के देशों को देने में हिचकिचाते हैं। वास्तव में नई तकनोक का स्थानान्तरण नाम मात्र का होता है। स्क्रूडायवर तकनीक के तहत बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा मशीन के कल पुर्जे प्रदान किये जाते हैं और भारत के कारीगरों द्वारा केवल उन्हें जोड़ने (कसने) का काम होता है। लाभ की भूखी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ तृतीय विश्व के देशों में कई उन ऐसी तकनीकों को तथा उत्पादन तरीकों को भी थोपा है, जो कि उनके देशों में जनघातक होने के कारण प्रतिबंधित की जा चुकी हैं। उनकी प्रतिकूल तकनीक न विकास की आवश्यकतानुसार हैं और न ही देश को आत्मनिर्भर करने के अनुरूप हैं। यह तकनीक हमारे देश में उपस्थित कच्चे माल के अबाध भण्डार के उपयोग करने में मदद नहीं करती हैं, वरन् स्वतंत्र अन्वेषणों को गंभीर रूप से प्रभावित करती हैं। इस प्रकार बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ स्वतंत्र तकनीक को प्रभावित तो करती ही हैं साथ ही अति आवश्यक सामाजिक परिवर्तन को भी अवरूद्ध कर देती हैं।

अनुसंधान के प्रति उपेक्षा

विदेशी विकसित देश अपनी कुल आय का १० से १५ प्रतिशत अनुसंधान कार्य में खर्च करते हैं किन्तु भारत में कुल आय का प्रतिशत जो अनुसंधान कार्य में खर्च किया जाता है वह है १.५% और इसमें से भी अनुसंधान के नाम पर बहुत सा पैसा विदेशों को चला जाता है। विदेशी कम्पनियाँ अनुसंधान के नाम पर

अवैज्ञानिक तरीकों से दवा बनाने में लिप्त रहती हैं। टनों दवायें जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मंच पर १०० रुपया किलो उपलब्ध हैं वही दवाएँ ५ हजार रुपये प्रति किलो की दर से बेची जाती हैं। इसमें हमें विदेशी मुद्रा की बहुत बड़ी हानि हुई है।

आयुर्वेदिक दवाएँ

भारत की आयुर्वेदिक दवाएँ प्रकृति पर निर्भर हैं। दवा के फार्मूले गांव-गांव उपलब्ध थे। गांवों में कुछ दवाएँ वैद्यजी तैयार करते थे। कोई ऐसी वनस्पति नहीं थी जो दवा के काम न आती हो। भारतीय दवा के कारण मनुष्य के कुल खर्च का उसके स्वास्थ्य पर खर्च का बजट मात्र ३% था। यदि औषधि के पौधों को सुरक्षित किया गया तो हमें इससे लाभ ही लाभ है। यह हमें विदेशी मुद्रा दिला सकती है। चीन में औषधि पौधों के संरक्षण के लिए १००० औषधि पौध पार्क हैं। चीन ने अपनी पुरानी दवा की पद्धति को संजोकर रखा है। अच्छा होता कि हमारे देश में इस ओर ध्यान दिया जाता।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के देशघातक कारनामें

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आचरण ने औषधि निर्माण क्षेत्र में मानवीय दृष्टिकोण की अन्त्येष्टि ही कर दी है। इनके भ्रष्ट आचरण की जांच के लिए भारत सरकार ने हाथी समिति का गठन किया। इस समिति की रिपोर्ट में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की अमानवीय और पापी गतिविधियाँ उजागर हुईं। विकसित देश अपनी खतरनाक औषधियों के प्रयोग के लिए भारतीयों को 'सुअर' के समान उपयोग में लाते हैं।

विकसित देशों की प्रतिबंधित दवाइयाँ विकासशील देशों में धड़ल्ले से बिकती हैं। अमरीका सिनेटर ओरीया हच ने सिनेट में एक बिल लाया था जिसे "हैच बिल" के नाम से जाना जाता है। जिसके अनुसार जो दवाइयाँ अमेरिका में मनुष्यों के उपयोग के लिए प्रतिबंधित हैं उनका उत्पादन अमेरिका से बाहर भेजने के लिए हो। विकसित देशों की सरकारें जैसे अमरीका, ब्रिटेन, जर्मनी, स्विटजरलैण्ड, फ्रांस आदि जो कि पूंजीवादी व्यवस्था की पक्षधर हैं इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की अनैतिक एवं अमानवीय एवं खतरनाक व्यापार तकनीक को सहयोग देती रहती हैं। सीबा गायगी जो महाकाय बहुराष्ट्रीय कम्पनी है, ने अतिसार के लिए "इलीक्वीनाल" का उत्पादन किया इस औषधि के इस्तेमाल करने के कारण (SMON) जैसा रोग होता है, जिससे

अन्धापन और पैर हाथ के पक्षाघात होते हैं। केवल जापान में इसके कारण ११ हजार लोगों की मृत्यु हुई। १९७०-में स्वीडन के डाक्टर ओली हन्सन ने इस बहुराष्ट्रीय कम्पनी के विरूद्ध मुकदमा लड़ा जो ८ वर्ष तक चला। अन्त में उनकी जीत हुई। न्यायालय ने करोड़ों डालर का मुआवजा इन पीड़ितों के परिवार को दिलवाया। भारत में गठित हाथी समिति ने यह पाया कि देश में प्रचलित १५००० औषधियों में से ११६ औषधियाँ आवश्यक हैं। शेष सभी औषधियाँ खतरनाक हैं। वैसे ही ड्रग कन्सल्टेटिंग कमेटी ने औषधियों का अध्ययन करके ३३ समस्याओं की रिपोर्ट दिया था।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जो सैनिक यंत्रों की सामग्री तथा शस्त्र उत्पादन क्षेत्र में थी। द्वितीय विश्व महायुद्ध के समय युद्ध कराने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थीं।

अभी अभी भारत सरकार ने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की बी.सी.सी. आय बैंक की बम्बई शाखा को अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों के कारण बन्द करवाया है। पंजाब के आतंकवादियों को शस्त्र देना, मादक पदार्थों के लिए धन देना, राजनीतिक माफिओं के आश्रय देने जैसे गंभीर आरोप इस बैंक के विरूद्ध हैं। अन्य देश भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के गोपनीय हरकतों की खोज कर रहे हैं।

एक्झोन कम्पनी ने इटली की सत्तासीन पार्टी को रिश्वत देकर हांडुरस केले बाहर बेचने के लिए लगने वाले कर में ५० प्रतिशत की कटौती कराई। बोहेमिया के राष्ट्रपति को वहां के तेल उद्योग को अपने आधीन करवाने के लिए बहुराष्ट्रीय तेल कम्पनी ने ३ लाख डालर और एक हेलीकाफ्टर दिया। संयोग ऐसा कि इसी हेलीकाफ्टर दुर्घटना में बोहमिया के राष्ट्रपति की मृत्यु हुई। गल्फ तेल कम्पनी ने दक्षिण कोरिया के तेल उद्योग पर कब्जा करने के लिए वहां के राजनीतिक नेताओं को घूस में १० लाख डालर दिए और दल के कोषाध्यक्ष किम को ३० लाख डालर घूस में दिए। लाकहीड कम्पनी ने जापान के प्रधानमंत्री तनाका को २१० लाख डालर घूस में दिए ताकि जापान उनके २१ विमान खरीद ले। घपला उजागर हो जाने के कारण तनाका को प्रधानमंत्री पद से त्याग पत्र देना पड़ा। ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जो आये दिन चर्चा में आते हैं जिसमें बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा राजनीतिक नेताओं की खरीद फरोक्त की बात रहती है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ – गुप्तचरी का केन्द्र

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के कार्यालयों में से अनेक कार्यालय प्रभुता सम्पन्न देशों के गुप्तचर तथा प्रछन्न दलालों की गुप्त गतिविधियों के केन्द्र बने हुए हैं। अपने देश की सुरक्षा की दृष्टि से युद्ध चालना में अत्यन्त नाजुक, संवेदनशील ऐसे सुरक्षा सम्बन्धी मामलों में भी ये कम्पनियाँ अत्यधिक दखलांदजी करती हैं और अपने को नुकसान पहुँचाती हैं।

सत्ता में संघर्ष कराने का काम

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने सुमात्रा और इण्डोनेशिया में गृह युद्ध कराया। नाइजेरिया में भी प्रयत्न पूर्वक गृह युद्ध कराया। युनाइटेड फ्रुट कम्पनी ने लैटिन अमरीका में और फायर स्टोन कं. ने लिबेरिया में गृह युद्ध करने के लिए लोगों को उकसाया।

राजनीतिक हत्यायें

१९६७ में क्वामें क्रुमाह घाना देश के प्रधानमंत्री की राजनीतिक षडयंत्र चलाकर इन कम्पनियों ने सत्ता हस्तांतरण करवाया। साथ ही उनकी हत्या भी करवाई। १९७० में चिली देश के शासक सल्हडोर अलेन्डी की हत्या के लिए अमरीकी बहुराष्ट्रीय कम्पनी आय.टी.टी. ही जिम्मेदार थी। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने अपने देश या अपने व्यापार के हित पोषण में अनेक हत्यायें करायी हैं।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के कुत्सित उद्देश्य

(१) बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जिस देश की होती हैं यजमान देश की आर्थिक स्थिति को अपने देश के पक्ष में बनाती हैं।

(२) अपने देश की आन्तरिक और विदेश नीति यजमान देश पर थोपकर बलपूर्वक अपना प्रभाव बनाती हैं।

(३) अपने सरकारों के प्रति वफादारी दिखाते हुए यजमान देश की सरकारों की नीतियों को प्रभावित करती हैं।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने यूरोप और जापानी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को पीछे धकेलकर अपना प्रथम स्थान निश्चित किया था किन्तु आज ४३ अग्रिम बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में से २० कम्पनियाँ अमरीकी हैं। २० कम्पनियाँ यूरोप की हैं तथा जापान, दक्षिण अफ्रीका और कोरिया की एक-एक हैं।

भारतीय आर्थिक नीति को अपने चंगुल में फँसाकर रखने के लिए अमरीका अपने देश की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की सहायता करता है। दक्षिणी कोरिया में अमरीका अपनी जड़ें मजबूत कर सके इसलिए अमरीकी शासन ने वहाँ चालीस हजार सैनिकों को काम में लगाया है।

आर्थिक सहायता का ऋण जाल

जो धन विकसित देश विभिन्न माध्यमों से विकासशील देशों से लूटते हैं फिर से उसी धन को तृतीय विकासशील देशों को ब्याज की अधिक दरों पर ऋण के रूप में देते हैं। तृतीय विश्व के अनेक देश इस प्रकार के ऋण जाल में फंसे हैं। कारण कि वे पुराना ऋण चुकाने में अक्षम थे।

विकासशील देशों द्वारा प्रदत्त सहायता राशि का अधिकांश कपट पूर्ण जाल के रूप में बुना जाता है। बहुराष्ट्रीय बड़ी कम्पनियों के नीचे बहुत सी छोटी-छोटी कम्पनियाँ होती हैं। इन कम्पनियों में तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी तीसरी दुनिया के होते हैं जब कि नीतिगत निर्णय लेने वाले प्रबन्धक बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के गृह देश के होते हैं।

विकासशील देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ

भारत, दक्षिण कोरिया आदि के कुछ एकाधिकार वाले उद्योगों को भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के नाम से पुकारते हैं। फौण्ड, राक केलर, मिती, सुमिशी आदि कम्पनियाँ अपने वार्षिक अधिवेशन में भारत से टाटा को आमंत्रित करती हैं। भारत के अग्रणी एकाधिकार वाले जैसे टाटा, बिरला, अम्बानी, बैंकर, गोयनका, सिंघानियाँ, मफतलाल, श्रीराम आदि ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन के दौरान भारतीय बाजार और ब्रिटिश उद्योगों के मध्य बिचौलिए की भूमिका निभाते हुए अपने गढ़ बना लिए थे। आज 'स्वराजपाल' और 'हिन्दुजा' जैसे उच्च स्तर के कमीशन एजेन्ट वही काम कर रहे हैं।

भारत सरकार भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की एजेन्ट

स्वतंत्रता के पश्चात भारत सरकार की नीति रही है कि देश के आर्थिक विकास में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाए। इसे "विदेशी पूँजी तथा आयात विकल्प" का नाम दिया गया। इस प्रकार झूठी आत्मनिर्भरता की नीति ने देश में निर्माण के नाम पर विदेशी पूंजीपतियों के वर्चस्व की अनुमति दी।

धनी देशों द्वारा आर्थिक साम्राज्य कायम करने का षडयंत्र

पश्चिमी राष्ट्र अपने हित के लिए नयी-नयी योजनाएँ प्रस्तुत करते हैं। उपनिवेशवाद और राजनीतिक दासता अब दूर की बात हो गई है। इनके स्थान पर अब वे वैचारिक एवं आर्थिक आधार पर दूसरे देशों को नियंत्रण में लाना चाहते हैं। जिसके लिए समय-समय पर कुटिल योजनाएँ पश्चिम देशों द्वारा तैयार की जा रही हैं। उनके द्वारा किसी विकासशील देश को आर्थिक सहायता दिए जाने में एक बात छिपी रहती है कि वे इसी बहाने उस देश में अपना हाथ-पांव पसारना चाहते हैं। भारत सरकार स्वयं पश्चिमी देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की एजेन्ट बनकर इनको पैर पसारने में सहायता कर रही है। विदेशी कम्पनियों के शेयर कनाडा में ५%, आस्ट्रेलिया में १५% हैं जब कि भारत में ४०% से बढ़कर ५१% हो गया है और १००% किए जाने की तैयारी है।

आई.एम.एफ. और विश्व बैंक के माध्यम से भारत सरकार पर इस बात का दबाव पड़ रहा है कि विदेशी कम्पनियों के शेयर १००% किए जाएं।

एकस्व (एकाधिकार–पेटेन्ट) कानून

२५० से ज्यादा संसद सदस्यों तथा देश की मशहूर हस्तियों ने सरकार से १९७० पेटेन्ट कानून में फेरबदल नहीं करने की अपील की है। 'नेशनल वर्किंग ग्रुप आफ पेटेन्ट लाज' की पहल पर यह अपील व्यापार और तटकर आम समझौता (जनरल एग्रीमेन्ट आफ ट्रेड एण्ड टेरिफ्स–गाट) की जिनेवा में उरुग्वे दौर की बैठक में संभावित दवाइयों के मद्देनजर की गई है। ग्रुप ने विगत तीन साल से इस बाबत मुहिम छेड़ रखी है। बयान में कहा गया है कि पेटेन्ट कानून में यदि एक तरफा बदलाव किए गये तो देश के औद्योगिक और कृषि दोनों ही प्रमुख आर्थिक स्रोतों

पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ काबिज हो जायेंगी । अमेरिका और दूसरे धनी देशों का दबाव भारतीय पेटेन्ट कानून में पेटेन्ट अधिकार की मियाद ५ वर्ष से बदल कर २० बरस करने और उसी पेटेन्ट के आयातित माल पर भी लागू करने के बाबत है । इसके अलावा लाइसेन्स की अनिवार्यता, लाइसेन्स देने के अधिकार और पेटेन्ट के रद्द किए जाने सम्बन्धी पेटेन्ट कानून १९७० के प्रावधानों में भी फेरबदल चाहता है । फिलहाल पेटेन्ट कानून में पेटेन्ट हुए माल की बिक्री में एकाधिकार या मनमाने दाम वसूली की हालत में पेटेन्ट के ३ साल बाद सरकार पेटेन्ट धारक को बदलकर किसी और को उसके उत्पादन का अधिकार दे सकती है । इस व्यवस्था के चलते बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भारत में दवा उद्योग में खासे दखल के बावजूद सरेआम एकाधिकार नहीं जमा पाई हैं । यदि सरकार ने पेटेन्ट कानून में संशोधन करना मान लिया तो यह एकाधिकार की बात उनके लिए आसान हो जायेगी ।

निस्सन्देह भारत बहुत बड़े आर्थिक संकट में फँसा है । इसे आर्थिक दृष्टि से गुलाम बनाने के उद्देश्य से विकसित देशों ने जनरल एग्रीमेन्ट फार ट्रेड एण्ड टेरिफ्स (गाट) के माध्यम से आर्थिक आक्रमण किया है । इस आक्रमण में प्रत्येक धनी देश शामिल हैं । प्रथम श्रेणी के देश जिनकी आय प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष ६००० डालर से ऊपर हो । दूसरे श्रेणी के देश वे हैं जिनकी आय प्रति व्यक्ति ५८०० से ६००० डालर तक प्रति वर्ष हो । तीसरी श्रेणी के देश वे हैं जिनकी आय ५८०० डालर तक प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष हो । ये प्रथम श्रेणी के धनी देश अपनी प्रति व्यक्ति आय का स्तर बनाए रखने के लिए तृतीय श्रेणी के विकासशील देशों पर आर्थिक हमला किए हुए हैं, भारत और अमेरिका के पेटेन्ट कानून में कुछ मतभेद हैं :–

बौद्धिक सम्पदा के संरक्षण (ट्रेड रिलेटेड इनटेलेक्चुवल प्राप्रर्टी राइटस – TRIPS) के अधिकार में मतभेद हैं । भारत और अमेरिका में इस अधिकार के अन्दर समय का अन्तर है । भारत में यह अधिकार ५ से ६ वर्ष तक है, जब कि अमेरिका में २० से २५ वर्ष तक का है । पेटेन्ट कानून का उद्देश्य अविष्कार करने वाले व्यक्ति को प्रोत्साहन देने हेतु आर्थिक लाभ पहुँचाना है, किन्तु आविष्कार के पीछे दो तत्वों का योगदान रहता है । पहला व्यक्ति का परिश्रम और दूसरा समाज का योगदान (कालेज, पुस्तकालय विश्व विद्यालय, अनुसंधान संस्थान, आर्थिक अनुदान आदि) इसलिए दोनों योगदान पर विचार करना आवश्यक है । अमेरिका का एकस्व (पेटेन्ट) कानून व्यक्ति प्रधान है, जबकि भारत का एकस्व कानून जनता (पियपुल) प्रधान है ।

दूसरा मतभेद यह है कि अमरीका में प्रोडक्ट को पेटेन्ट किया जाता है। जब कि भारत में प्रासेस (प्रकृया) का पेटेन्ट किया जाना अधिक लाभदायक है क्योंकि ऐसा करने से सस्ती प्रक्रिया के लिए सतत अनुसंधान कार्य चलता रहता है और उत्पाद के पेटेन्ट हो जाने के बाद उसके निर्माण से सम्बन्धित अनुसंधान कार्य समाप्त हो जाता है। अतः इस विषय में भारत का पेटेन्ट कानून सामाजिक हित को अधिक महत्व देता है। भारत में पेटेन्ट कानून आविष्कारक और उपभोक्ता दोनों को ध्यान में रखकर बनाया गया है।

तीसरा मतभेद जीन पेटेन्ट के विष्य में है। किसी भी देश में सजीव संसाधनों को पेटेन्ट करने का कानून नहीं है, किन्तु अमरीका ने १९८८ में कानून बदलकर जीन को भी पेटेन्ट योग्य बना दिया है। अब इस कानून को वह विकासशील देशों पर थोपना चाहता है। वास्तव में किसी जीन से एक प्रजाति को उन्नति प्रजाति में बदलना कोई आविष्कार नहीं है। केवल अन्वेषण मात्र है। अतः इसे पेटेन्ट करना पेटेन्ट नियमों का उल्लंघन है। विकासशील देशों के किसानों ने अपनी मेहनत से बहुत सी प्रजातियों का विकास किया है, किन्तु विकसित देश इसे जीन पेटेन्ट के माध्यम से अपनी सम्पदा बनाने का षडयंत्र कर रहे हैं। प्राकृतिक सम्पदाओं को पूरे विश्व की विरासत माना जाता रहा है। भारत के चावल की १९००० प्रजातियाँ मनीला के चावल अनुसंधान संस्थान में हैं। किसी भी देश का नागरिक इनमें से किसी प्रजाति को अनुसंधान के लिए नाम मात्र का शुल्क देकर ले सकता है। जीन के पेटेन्ट हो जाने के बाद भारत के अनुसंधानकर्त्ता बड़ी मुश्किल में पड़ जायेंगे। उनके अनुसंधान के लिए आधार ही नहीं बचेगा। भारत के किसानों के बीज पर विकसित देशों, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों की नजर है। उनके स्वार्थ सिद्ध हो रहे हैं। पर अब देश में इन स्वार्थों के खिलाफ एक नया "जीन अभियान" शुरू हुआ है। १९७९ में चावल अनुसंधान संस्थान कटक के प्रमुख चावल विशेषज्ञों ने यह चेतावनी दी है कि अधिक ऊँची उत्पादकता वाली किस्मों के अनुवांशिक आधार संकीर्ण हैं। उनमें एक रूपता है। उनमें बीमारियों और कीड़ों से आक्रांत होने का खतरा है। जबकि कृषि मंत्री की घोषणा के अनुसार १९९२ में ९९.६५% मिलियन एकड़ भूमि पर ऊँची उत्पादकता वाली किस्में लगी हुई हैं।

दाना दाना गुलाम

जीन के पेटेन्ट की बात तो भारत को दाना-दाना के लिए गुलाम बनाना है। जब कि अपने यहां पहाड़ के लोग अनाज के बीज को अपने जीवन से भी बढ़कर मानते आये हैं। एटकिसन ने हिमालय गजेटियर में यहां के लोगों की बीज संभालकर रखने की प्रबल भावना का उल्लेख किया है। एक बार बहुत बड़ा अकाल पड़ा और हजारों लोग भूख से तड़प-तड़प कर मर गये। आपदा से त्रस्त घरों को देखने जब लोग पहुँचे तो देखा कि तोमड़ी या अन्य बर्तनों में रखा गया धान, गेहूँ, मडुआ व अन्य सभी फसलों का बीज सुरक्षित है। लोगों ने मरना स्वीकार किया किन्तु बीज नहीं खोया।

जब गोरखों ने गढ़वाल पर आक्रमण किया तो लोग जहां-तहां भागने लगे किन्तु तोमड़ी या अन्य बर्तनों में जो अनाज के बीज रखे थे उसको अपने साथ लेकर भागे। कहीं-कहीं लाशें पड़ी थी किन्तु तोमड़ी उनके सीने से चिपकी थी।

बीज संरक्षण के इन संस्कारों का ही कारण था कि कुछ दशक पूर्व तक पहाड़ के लोग अन्न के मामले में आत्मनिर्भर थे। वे केवल आत्मनिर्भर ही नहीं थे अपितु अतिरिक्त अनाज को मैदानी इलाकों में भी भेजते थे। आज से ५०-६० वर्ष पहले यहाँ खाद्यान्न की दुकानें नहीं थी। कहीं-कहीं सामुहिक अनाज भण्डार भी थे। पशुपालन इतनी उन्नत दशा में थे कि घी के कनस्तर पहाड़ी लोग मैदानी क्षेत्र में ले जाकर बेचते थे। पहाड़ी खेती और जंगलों में इतना तालमेल था कि पौष्टिक तत्व लोगों को आसानी से मिल जाते थे।

प्रकृति की अमूल्य धरोहर-परम्परागत बीज पर कथित हरित क्रांति की उद्घोषक बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की गिद्ध दृष्टि दूर-दूर तक पहुँच रही है। वे हिमालय की इन सुरम्य घाटियों पर भी अपना जाल बिछा रही हैं। पहाड़ की धरती के विलक्षण बीज के स्थान पर नये कथित उन्नत किस्म के जहरीले बीज आ गये तो धरती पर जीवन अपने विनाश की उलटी गिनती शुरू कर देगा। अब तो राजनेता बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के जाल में फंस कर प्राकृतिक बीजों की जगह विनाश के बीज बोने लगे हैं।

(साप्ताहिक पाञ्चजन्य से साभार—१६ अगस्त १९९२)

हरित क्रांति पश्चिम देश से आयातित एक दिवा स्वप्न है, जिसने बड़ी खूबी से परम्परागत अनाज संरक्षण की विविधता पर कब्जा कर नयी तकनीक के रूप में खेती जो किसानों के समस्त जीवन का आधार है – पर शिकंजा कसा है।

रासायनिक खाद स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। रासायनिक खादों से तो मनचाहा उत्पादन होता है किन्तु मिट्टी रासायनिक खाद की आदी हो जाती है। एक समय था जब भारत में अकेले धान की तीन हजार किस्में थी। आज तो वे किस्में मात्र २५ शेष हैं। अब तो धान की किस्मों का ६० प्रतिशत स्थान बौने धान ने ले लिया है। जापान में नेरिन–१० नामक गेहूँ में ऐसे गुण पाये गये जिनकी वैज्ञानिकों को वर्षों से तलाश थी। इसकी लम्बाई कम होती है और तेज हवा में गिरता नहीं है। उत्पादन अधिक होता है। अमरीका के वैज्ञानिकों ने नेरिन–१० से गिनीज नामक संकर किस्म तैयार किया। १९५० के दशक में केलर फाउण्डेशन ने अमरीका के उन्नत बीजों को मैक्सिकों के खेतों में पहुँचाने का काम किया। मैक्सिको के गेहूँ के किस्मों के संस्करण के फलस्वरूप पिक्टिक ६२, पंजामो–६२, सोनारो–६३, सोनारो–६४ बौनी शंकर किस्में तैयार की। ४०० किलोग्राम बीज भारत भेजा। इन बौनी किस्मों को भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नयी दिल्ली, पन्त नगर, कानपुर, लुधियाना में परीक्षण हेतु उगाया गया। परीक्षण के दौरान पाया गया कि बौनी संकर किस्मों में नाइट्रोजन पीने की अधिक क्षमता थी। उसकी उत्पादन क्षमता भी अधिक थी। इसलिए बौनी किस्मों का कृषि क्षेत्र बहुत बढ़ गया किन्तु मोटे अनाजों में कमी आई है। चना तो बिल्कुल समाप्त हो गया है। जब बौनी किस्में परम्परागत बीजों से दुगुना, तिगुना उपज देती हैं तो कौन परम्परागत बीजों का संरक्षण करे।

उन्नत बीजों का मोहजाल परम्परागत बीजों की विविधता को निरन्तर डस रहा है, किन्तु परम्परागत बीजों को भुलाया नहीं जा सकता है। पहाड़ का सफेद सिन्दूरी आलू अपने स्वाद में बेजोड़ था, लेकिन रसायनों के प्रयोग वाले फार्म के आलू को अब कौन पसन्द करता है। पौध संवर्धन किसानों की जगह विदेशी कम्पनियों ने ले ली। इनका मुख्य उद्देश्य अधिक लाभ कमाना रहा है। परम्परागत फसलों में परिस्थिति को झेलने की ताकत तथा स्वास्थ्य पोषक तत्व होते हैं। इन फसलों का मिट्टी तथा जलवायु से गहरा सम्बन्ध रहता था। परम्परागत बीजों से धरती को हराभरा करने के लिए अनमोल बीजों के संरक्षण की आवश्यकता है। रिसर्च फाउण्डेशन

फार साइंस इकोलाजी एण्ड रिसोर्स पालिसी देहरादून ने इस विषय पर चिन्ता जाहिर की है। दुःखद स्थिति यह है कि परम्परागत बीजों के विलुप्त होने पर किसानों का बड़ा वर्ग अपने लम्बे अनुभव का प्रयोग नहीं कर पा रहा है। नई तकनीक का आधा-अधूरा ज्ञान कठिन बनता जा रहा है। हालांकि सभ्यता की दौड़ में नई तकनीक को एक तरफा नहीं किया जा सकता है, किन्तु साथ में परम्परागत बीज या पुरानी कृषि तकनीक को जीवित अवश्य रखना होगा।

गाट का दूसरा प्रस्ताव

व्यापार विषयक पूँजी निवेश (ट्रेड रिलेटेड इनवेस्टमेन्ट मेजर्स या TRIMS) का है। इस प्रस्ताव के द्वारा पाश्चात्य देश चाहते हैं कि उनकी कम्पनियों के तर्ज पर पूँजी निवेश, निर्यात, स्थानीय माल के उपयोग तथा विदेशी मुद्रा को बाहर भेजने पर कोई प्रतिबन्ध न लगाया जाए और कुछ क्षेत्रों को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए सुरक्षित रखने की व्यवस्था समाप्त की जाए। उपर्युक्त प्रस्ताव भारत की संप्रभुता पर सीधा अतिक्रमण करना है।

गाट का तीसरा प्रस्ताव – सेवाओं (Services) के सम्बन्ध में है। भारत में सेवाओं का विस्तार पहले से ही अधिक हो चुका है। भारत की राष्ट्रीय आय में सेवाओं का प्रतिशत ४१ है जबकि चीन में यह प्रतिशत २० है। देश के संतुलित आर्थिक विकास के लिए राष्ट्रीय आय में सेवाओं के भाग को कम करने की आवश्यकता है। विदेशी कम्पनियों का सेवा क्षेत्र में प्रवेश देश हित में नहीं है। अमरीका तो यह चाहता है कि उसकी सेवा कम्पनियों को भारत में सेवा करने दिया जाए किन्तु भारत की सेवा कम्पनियों को अमरीका में काम करने की अनुमति नहीं देना चाहता और कहता है कि इन कम्पनियों के कार्मिकों के अमरीका में प्रवेश का विषय इमीग्रेशन एक्ट के अन्तर्गत आता है। इस तरह एक तरफा व्यापार से भारत का भुगतान संतुलन जो पहले से ही अत्यधिक घाटा दिखा रहा है और अधिक बिगड़ जाएगा।

गाट के यह तीन प्रस्ताव जिसे गाट के चेयरमैन/आर्थर डंकल के प्रस्ताव के नाम से जाना जाता है विश्व में उपनिवेशवाद की पुनर्स्थापना के प्रस्ताव हैं। इन प्रस्तावों के द्वारा विकसित देश अविकसित देशों के शोषण की चली आ रही प्रक्रिया को एक स्थायी और वैधानिक रूप देना चाहते हैं। भारत को इस दबाव के आगे कदापि नहीं झुकना चाहिए।

सरकार की गलत आर्थिक नीतियों का विकल्प

वस्तु स्थिति यह है कि आजादी के बाद से अब तक भारत सरकार की आर्थिक नीतियाँ भारतीय परिस्थिति और परिप्रेक्ष्य की सम्पूर्ण उपेक्षा के आधार पर बनती आई हैं। आज देश के सामने जो आर्थिक और राजनीतिक खतरा दिखाई दे रहा है वह अकस्मात् नहीं आया है। बल्कि वह पिछले ४०-४५ वर्षों से चली आ रही गलत नीतियों का दुष्परिणाम है। अभी तक की सभी सरकारें चाहे वे किसी भी पार्टी की रही हों बुनियादी आर्थिक मामलों में कम ज्यादा उसी दिशा में चलती आई हैं।

भारतीय समाज जिस व्यवस्था के आधार पर सैकड़ों वर्षों टिका रहा है वह स्वाश्रयी तथा स्वावलम्बी ग्रामीण व्यवस्था थी। इस देश के लाखों गांव और जनपद अपने कारोबार से स्वतंत्र थे और आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी थे। उसका आधार था गांव की जातिगत बुनियाद पर खड़ा हुआ यहां का मजबूत सामाजिक संगठन। गांव के ऊपर छोटे-बड़े राज्य थे, लेकिन उन राज्यों का ग्रामीण प्रजा के आन्तरिक जीवन में या व्यवस्था में कोई दखल नहीं था। गांवों में राज्य का सम्बन्ध केवल केन्द्रीय खर्च के लिए कर वसूली तक ही सीमित था। राजा को उचित कर देकर प्रजा अपना जीवन-व्यवहार चलाने के लिए स्वतंत्र थी। आर्थिक दृष्टि से भारत के गांव मूलभूत आवश्यकताओं के मामले में लगभग स्वावलम्बी और स्वयंपूर्ण थे। इस प्रकार भारत की जनता राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र और आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी थी। कमियाँ और कमजोरियाँ तो हर एक व्यवस्था में होती हैं और समय-समय पर उसमें विकृतियाँ भी उत्पन्न होती रहती हैं। लेकिन भारतीय समाज स्वाश्रयी और स्वावलम्बी होने के कारण जीवन्त और प्राणवान था। इसलिए वह अपनी कमजोरियों को दुरुस्त कर लेता था। भारत के इतिहास में ऐसे अनेक प्रसंग मौजूद हैं जब प्रजा ने राजसत्ता के अन्याय का सफलता पूर्वक मुकाबला किया। यह इसलिए संभव हो सका कि प्रजा स्वावलम्बी और स्वाश्रयी थी। राज्यसत्ता पर निर्भर रहने वाली प्रजा राज्य की ओर से होने वाले अन्याय और अत्याचार का कभी भी मुकाबला नहीं कर सकती थी। भारत की इस ग्रामीण व्यवस्था के कारण भारत में सही अर्थों में प्रजातंत्र था, ऊपर भले ही केन्द्रीय या स्थानीय राज्य सत्ताएँ रही हों। अंग्रेज इस बात को समझ गये थे। इसलिए उन्होंने यहां की स्वायत्त, स्वावलम्बी और विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था को तोड़ा। अंग्रेज जानते थे कि जब तक ऐसा नहीं किया जाएगा

तब तक वे मनमानी नहीं कर सकते हैं। भारत में सत्ता हस्तांतरण के बाद भारत की बागडोर नेहरू के हाथ में आई। उन्होंने स्वतंत्र भारत का आर्थिक और औद्योगिक ढांचा पश्चिमी देशों की तर्ज पर बनाया, जो एक बुनियादी गल्ती थी, जिसका खामियाजा भारत की जनता आज भुगत रही है। तृष्णा, भोग और स्वार्थ से प्रेरित आज की शोषणकारी और परम्परा होड़ पर आधारित परोपजीवी व्यवस्था के बजाय क्या हम शारीरिक मेहनत, संयम और सहयोग पर आधारित स्वावलंबी व्यवस्था को फिर से प्रतिष्ठित करने का साहस करने को तैयार हैं ? अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के मामले में गांव यथासंभव स्वावलम्बी हों इस दृष्टि से गांव की खेती और उद्योग धन्धों की योजना गांव खुद बनाएँ। सरकार उसके क्रियान्वयन में गांव की मदद करे। गांव में पैदा हुआ कच्चा माल यथासंभव प्रशोधित (प्रोसेसिंग) होकर ही गांव के बाहर जाए। केन्द्र, राज्य और जिले की तरह गाँव को भी प्रशासन की इकाई के रूप में मान्यता दी जाए।

गाँव से ऊपर जो व्यवस्था के लिए प्रतिनिधि चुने हों उन पर जनता का नियंत्रण हो। सरकारी खर्च में कमी की जाए। उद्योगों के प्रबन्ध व पूंजी में श्रमिकों की भागीदारी की जाए। स्वदेशी भावना जागृत की जाए। स्वदेश की बनी चीजों के प्रति हमारा लगाव हो। स्वदेशी वस्तुओं के सेवन पर जोर आदि अनेक माध्यम से सरकार की आर्थिक नीतियों में बदल आ सकता है। तभी भारत जो प्रत्येक मामलों में धनी देशों का मुंह देखता है वह बन्द होगा। यह काम सरकार नहीं जनता करेगी। जनता का जागरण स्वदेशी जागरण है। सरकार बाध्य होकर अपनी आर्थिक नीतियों में बदल लाएगी और पूंजी प्रधान योजनाओं के स्थान पर अपने सीमित साधनों के माध्यम से अपने देश के विकास का प्रयत्न करेगी।

फर्टीलाइजर्स

जहां यह बात सत्य है कि फर्टीलाइजर के कारण उत्पादन अधिक होता है वहीं यह बात भी उतनी ही सत्य है कि रासायनिक खाद जमीन (मिट्टी) को बंजर बना देती है। इसके द्वारा उत्पादित अनाज कम स्वादिष्ट होता है। गोबर की खाद मिट्टी को उपजाऊ बनाती है और नीम की खली खेतों में डालने से सभी प्रकार के कीट नष्ट हो जाते हैं और जमीन भी उपजाऊ होती है। देश में फर्टीलाइजर कारखाने पैट्रोल पर आधारित हैं। देश के सम्पूर्ण आयात का २०% पैट्रोल पर खर्च होता

है। यदि हम कम्पोस्ट खाद तैयार करने लगें तो कृषि भूमि का उपजाऊपन जो धीरे-धीरे क्षीण हो रहा है, कम हो जायेगा। मिट्टी को ताकत मिल जाएगी। डा. के.के. अग्रवाल (दिल्ली) ने कहा है कि खेतों में मोथा या खर पतवार नष्ट करने के लिए जो फर्टीलाइजर का उपयोग होता है उन खेतों का अनाज खाने से हृदय रोग होता है। इसलिए हम अपनी देशी खाद को तैयार करें तो स्वस्थकर अन्न मिलेगा और हमारे खेतों की मिट्टी की ताकत भी सुरक्षित रहेगी।

पशु शक्ति

गाय, बैल, भैंस से हमारे खेतों को गोबर के माध्यम से खाद मिलेगी इसलिए पशुधन पर विशेष ध्यान देना होगा। 'पशुओं द्वारा उत्पादकता' विषय पर हिन्दुस्तान लिवर कम्पनी ने एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया था, जिसमें भाषण देते हुए इज्जतनगर के डा. पी.एन. भट्ट डारेक्टर आर.बी.आई. ने कहा कि भारत के देशी बैलों की शक्ति जो कृषि कार्य में लगी है वह लगभग ४०००० मेगावाट है। आगामी २१वीं शताब्दी के प्रारंभ में यह शक्ति बढ़कर ६०,००० मेगावाट हो जाएगी। इस शक्ति को प्राप्त करने के लिए करीब २ करोड़ ट्रैक्टर की आवश्यकता होगी। पैट्रोल खर्च बढ़ जायेगा। ट्रैक्टर के लिए किसान कर्ज लेगा। ट्रैक्टर १५ वर्षों में स्क्रैप हो जायेगा। अगर उसको बेचकर किसान नया ट्रैक्टर लेना चाहें तो उसे पुराने ट्रैक्टर के बदले प्राप्त पैसे का कई गुना पैसा और लगाना पड़ेगा, जिसके लिए उसे कर्ज लेना पड़ेगा। इस प्रकार ट्रैक्टर किसान को कर्ज के जाल में फंसा देगा। अगर ट्रैक्टर रखने वाले रासायनिक खाद का भी उपयोग करेंगे तो एक ओर जहां भूमि बंजर होगी तो दूसरी ओर कर्ज भी बढ़ेगा। ऐसी हालत में आधुनिकता से पीछे हटकर अपने पुराने तरीके अपनाने में ही हमारा भला होगा। साथ ही देश भी आत्मनिर्भर होगा।

चमड़ा उद्योग

यह हमारा घरेलू उद्योग था। देहात के कारीगर अच्छा तथा मजबूत जूता बना लेते थे। अपने यहां बाटा कम्पनी आई, जो बहुराष्ट्रीय कम्पनी है। इसने धीरे-धीरे दाम बढ़ाये। आज तो इस कम्पनी के जूते और चप्पल सर्व साधारण की पहुँच से बाहर हैं। इस कम्पनी ने हमारे देशी कारीगरों का सर्वनाश कर दिया। चमड़ा प्राप्त करने का अपने यहां एक मात्र साधन मरे पशु थे। मरे पशुओं की खाल से हमारी

आवश्यकताएँ पूरी हो जाती थीं। भारत में १.२५ लाख पशु प्रतिदिन मरते हैं। अर्थात ४ करोड़ ५६ लाख २५ हजार पशु खाल हमें वर्ष में प्राप्त होती है। मरे पशुओं की खाल से बने सामान की कीमत २५ अरब रूपये होती है। इसलिए भारत में चमड़े के लिये मरे पशुओं की खाल पर्याप्त है। इसके लिए पशुओं की बधशाला खोलने की आवश्यकता नहीं है। खेद है कि हमारी सरकार विदेशों से प्रभावित होकर बधशालायें खुलवा रही है तथा पशु शक्ति की उपेक्षा कर रही है। पशुधन की ओर ध्यान देकर इससे अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारना होगा।

दुग्धशाला

भारतीय नस्ल पर आधरित दुग्ध शालाएँ होनी चाहिए। देसी गाय के बछड़े परिश्रमी होते हैं जब कि संकर नस्ल के बछड़े कमजोर होते हैं। देशी गायों का दूध रोगनाशक होता है। संकर नस्ल की गाय के बछड़े केवल बधशाला के लायक होते हैं। उनसे और कोई काम नहीं होगा। हमारे देसी बैल २४ घन्टे में ८० मील अर्थात् १२० किलोमीटर का सफर तय कर सकते हैं। यदि हमारे पशुओं की नस्ल का पतन हुआ तो यह सारी बातें स्वप्नवत हो जाएँगी। आज दुग्धशाला की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि इसकी व्यवस्था गोपालन के माध्यम से होती है तो दूध, दही, घी, मक्खन बनाने की पुरानी पद्धति पुनः प्रारम्भ हो जाएगी। गाय का दूध भैंस की तुलना में गुणकारी एवं स्वास्थ्यकर होता है इसलिये हमें अपनी देसी नस्लों को सुरक्षित रखना होगा। और संकर नस्ल बनने से अपने पशुओं को बचाना होगा। यह भी स्वदेशी अपनाओं का एक अंग है।

विकासशील देशों के प्रति उपेक्षाभाव

विश्व बैंक के प्रधान लारेन्स समर्स ने कहा कि विकसित देशों को अपने पर्यावरण दूषित करने वाले उद्योगों को विकासशील देशों में लगाना चाहिए या जो लगे हैं उन्हें भी विकासशील देशों में स्थानान्तरित कर देना चाहिए। उनका यह भी कहना है कि विकासशील देश की जनता जो वायु सेवन करती है और जो पानी पीती है उसके गुण दोष पर ध्यान नहीं देती है। उन्होंने कहा कि यदि विकासशील देश ऐसे पर्यावरण दूषित करने वाले उद्योग को अपने यहां लगवाने को तैयार हों तो इसके बदले में उन्हें आर्थिक और तकनीकी सहायता दी जाए। शायद भोपाल का गैस काण्ड विकसित देशों के इसी सोच का एक दुःखद एवं विनाशकारी परिणाम है।

देश का गिरता उत्पादन

देश में निरन्तर गिरते हुए उत्पादन पर भूतपूर्व राष्ट्रपति वैंकट रमन ने गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुए ७ सितम्बर १९९१ को एफ.आई.सी.सी. आई ए.जी. एम को सम्बोधित करते हुए कहा था कि ब्रिटिश शासन से पूर्व विश्व के उत्पादन में भारत का अंश १७.६%, यू.के. का ९.५% तथा संयुक्त राष्ट्र अमरीका का २.४% था, जो बदलकर वर्ष १९९० में भारत का १.७:, यू.के. का १८.५%, और संयुक्त राष्ट्र अमरीका का २३.५% हो गया। ऐसा होने का एकमात्र कारण यह है कि हमने अपने पुरानी पारम्परिक पद्धति को छोड़कर विदेशी पद्धति अपनायी जो हमारे देश के अनुकूल नहीं थीं। हम चमक दमक में फंस गये और स्वावलम्बी तथा स्वाश्रयी पद्धति को छोड़ दिये। किसी कवि ने ठीक कहा है –

जिस दीपक ने अंधियारे में हमको राह दिखाई है।
सूरज से अनुबन्ध किया है हमने उसे मिटाने का।

अपने सीमित साधनों को हमने छोड़ा। विदेशी कर्ज लेकर विकास करना चाहा तो पालक देश ने हमारा भयंकर शोषण किया। जापान जो हमारा सबसे बड़ा पालक है, हमारा कच्चा लोहा ३९ पैसा प्रति टन अपने देश ले जाता है। हम मजबूरी में कच्चा लोहा दे रहे हैं। कारण कि जापान के हम कर्जदार हैं।

आज हमारे सामाजिक परिदृश्य में से राष्ट्रीय चेतना की दीप्ति नदारद है। कुछ राजनीतिक पार्टियों ने राष्ट्रीय स्रोतों को लगभग सुखाने का ही काम किया है। जब कि आज देश की सबसे बड़ी जरूरत राष्ट्रीयता की चेतना है। इसके अभाव मेंआर्थिक दासता से मुक्ति पाना कठिन है। स्वदेशी आन्दोलन भी एक राष्ट्रीय चेतना है। जब तक हमारे मन में राष्ट्र के प्रति तड़पन नहीं होगी। अपने देश की बनी हुई वस्तुओं के प्रति लगाव नहीं होगा। तब तक विदेशी वस्तुओं के प्रति हमारा आकर्षण बना ही रहेगा। हम अपनी छोड़ पराये पर नजर डालते ही रहेंगे। महात्मा गांधी ने स्वदेशी आन्दोलन के समय कहा था – 'विदेशी वस्तुओं पर नजर डालने में और पर स्त्री पर नजर डालने में कोई अन्तर नहीं हैं। दोनों एक जैसे घृणास्पद व्यवहार और व्याभिचार हैं।' राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के संस्थापक डा. हेडगेवार ने २४ मार्च १९३६ को कहा था, 'हमें राष्ट्रीय वृत्ति से स्वदेशी व्रत्त का पालन करना चाहिए।' महर्षि अरविन्द ने स्वदेशी का अभिप्राय बताते हुए कहा कि, 'स्वदेशी राष्ट्र

की अस्मिता और राष्ट्र की इच्छा शक्ति की पहचान है। राष्ट्र के लिए त्याग करने की तत्परता स्वदेशी में से ही झलकती है।' लोकमान्य तिलक ने कहा, 'स्वदेश के शत्रु और स्वदेशी के शत्रु में कोई अन्तर नहीं है।'

आर्थिक स्वतंत्रता का एक मात्र उपाय

देश की आर्थिक स्वतंत्रता का एक मात्र उपाय स्वदेशी के प्रति जागरण है। स्वाश्रयी स्वावलम्बी योजनाएँ इस कार्य में सहायक बन सकती हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उत्पाद के स्थान पर स्वदेशी उपभोक्ता वस्तुओं का अपने दैनन्दिन जीवन में हम प्रयोग करें यही समय का तकाजा है। सरकार को भी चाहिए कि वह अपने सीमित साधनों, के माध्यम से देश का विकास करे। विदेशी कर्ज के माध्यम से विकास की योजना न बनाए। आज आवश्यकता इस बात की है कि, 'तेतो पाँव पसारिये, जेतो चादर होय'। यदि चादर से अधिक पाँव पसारा (फैलाया) जाएगा तो पैर खुले रहेंगे और ठंड भी लगेगी। सरकार ने भी ऐसा ही किया, जिसके कारण देश पर महान आर्थिक संकट आया है, जिससे मुक्ति पाने का एकमात्र उपाय स्वदेशी वस्तु प्रेम है और कुछ नहीं। यही हमें संकट से उबार सकता है।

प्रकृति की अमूल्य धरोहर परम्परागत बीज पर कथित हरित क्रांति की उद्‌घोषक बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की गिद्ध दृष्टि दूर-दूर तक पहुँच रही है। वे हिमालय की इन सुरम्य घाटियों पर भी अपना जाल बिछा रही हैं। पहाड़ की धरती के विलक्षण बीज के स्थान पर नये किस्म के कथित उन्नत बीज आ गये तो धरती पर जीवन अपने विनाश की उलटी गिनती शुरू कर देगा।